© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
International Journal of Scientific Research in Science and Technology

महर्षि शुक्र के राज्य की उत्पत्ति की व्याख्या

डॉ. अवनीश कुमार
इतिहास विभाग,
बाबा साहेब भीमराव, अम्बेडकर बिहार
विश्वविद्यालय, मुज्फ्फपुर,भारत।

सारांश – प्राचीन भारत में राजतंत्रात्मक व्यवस्था का सूत्र निरंतर बना रहा है लेकिन इसके साथ ही साथ गणतंत्रात्मक व्यवस्था का वर्णन भी उपलब्ध होता है जिसका महत्व राजतंत्र की तुलना में अधिक न रहा । अतएवं सर्वमान्य रूप राजतंत्र का ही अस्तित्व रहा है क्योंकि समाज में लोकहित एवं अभ्युदय के लिए राजा की आवश्यकता स्वीकार की जाती रही इसलिए महर्षि शुक्र ने राजा, राजपद, उत्तराधिकारी और अधिकार एवं कर्त्तव्य से सम्बन्धित विवेचना विस्तार से प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार राजा के अभाव में राज्य प्रजा, समुन्द्र में नाविक के बिना डूबती नौका की भाँति, नष्ट हो जाती है प्राचीन भारत की राजतंत्रात्मक व्यवस्था की श्रृंखला में शुक्रनीति भी एक कड़ी के रूप में विद्यमान रही है ।

मुख्यशब्द – राजतंत्रात्मक, महर्षि शुक्र, राजा, राजपद, उत्तराधिकारी, अधिकार, कर्त्तव्य।

प्राचीन भारतीय विचारकों ने राज्य के स्वरूप सप्तांग मानते हुए सात अंगो के संयोग से राज्य के निर्माण की कल्पना की है। सप्तांग सिध्दांत का वर्णन वैदिक साहित्य में न होकर परवर्ती साहित्य में ही उपलब्ध होता है। यद्यपि वैदिक साहित्य में परवर्ती साहित्य की भाँति साप्तांग सिध्दान्त का वर्णन भी उपलब्ध नहीं होता लेकिन राज्य के शाश्वत स्वरूप के चिन्ह अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं। राज्य के आकर्षक स्वरूप का वर्णन वैदिक साहित्य से लेकर उसके परवर्ती साहित्य तक उपलब्ध होता है। सृष्टि से पूर्व ऋग्वेद मे विराट पुरूष के सिर, नेत्र, बाहु, पैर आदि असंख्य रूप में स्वीकार किये गए हैं । सृष्टि के प्रारंभ में इसी विराट पुरूष के विभिन्न नामों से, मन से चन्द्रमा , नेत्र से सूर्य, कान से वायु तथा प्राप्त और मुख से अग्नि आदि की उत्पत्ति मानी गई है। यजुर्वेद में राज्य का वर्णन पुरूष के समान किया है। महर्षि शुक्र ने उक्त विद्वानों की परम्परा का अनुसरण करते हुए राज्य के स्वरूप को सप्तांग माना है। उन्होने राज्य के स्वामी, अमात्य, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल आदि सात अंग स्वीकार किये हैं।

परवर्ती वैदिक परम्परा के अनुरूप ही महर्षि शुक्र ने राज्य के सात अंगों की समानता मानबागों से की है जिसके अन्तर्गत उन्होंने राजा को राज्य रूपी व्यक्ति का सिर तथा अमात्य राज्य रूपी व्यक्ति में नेत्र, मित्र के कान,

कोश में मुज, बल में मन, दुर्ग में दोनों होथों एवं राष्ट्र में दोनों पैरों की कल्पना की है। एक अन्य स्थान पर शुक्राचार्य ने राज्य की वृक्ष से भी की है जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि राज्य रूपी वृक्ष का मूल राजा, मोटी डालें, मंत्री, लोग शखाएँ–सेनापति, पल्लव, सेनाएँ फूल–प्रजाएँ, फल–भूमि से प्राप्त होने वाला कर एवं बीज–राज्य की भूमि आदि होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि शुक्रनीति में राज्य की प्रवृत्ति के साक्वय सिध्दान्त का वर्णन उपलब्ध होता है।

यद्यपि महर्षि शुक्र ने राज्य की मानव के अंगो से तुलना अवश्य की है लेकिन कार्यप्रणाली में समता स्पष्ट रूप से नहीं दर्शायी है किन्तु फिर भी महर्षि शुक्र द्वारा राज्य की मानव शरीर से की गइ तुलना तथा राजा, मंत्री आदि के लिये बताये गए कर्त्तव्यों के आधार पर की गई है। यह कहा जा सकता है कि मानव शरीर के अंगों की तुलना में राज्य के प्रत्येक अंग की स्थिति उसी के अंगो की तुलना में राज्य के प्रत्येक अंग की स्थिति उसी के अंगों के अनुरूप महत्त्व रखती है जिस प्रकार मानव शरीर में सिर की स्थिति सर्वोच्च वृध्दि के कारण होती है उसी प्रकार राज्य में राजा की स्थिती भी सर्वोच्च महत्त्व की राजतंत्रात्मा व्यवस्था के कारण है । जिस प्रकार सिर में स्थित बुध्दि सम्पूर्ण शरीर की गति को संचालित करती है उसी प्रकार राज्य में राजा सम्पूर्ण व्यवस्था का संचालक है। अतएव स्पष्ट है कि शरीर में स्थित सिर की भाँति आचार्य शुक्र के अनुसार महत्वपूर्ण स्थान राज्य में राजा का है। जिस प्रकार बुध्दि नेत्रों द्वारा दी गयी सूचना के अनुसार कार्य करती है ठीक उसी प्रकार राजा रूपी बुध्दि मंत्री रूपी नेत्रों की सूचना एवं सलाह के अनुरूप कार्य सम्पादित करती है। कान का कार्य जिस भाँति समस्याओं को सुनकर बुध्दि को परिचित कराना है कि उसी भाँति मित्र भी उनके सम्बन्ध में सुनी गई बातों से राजा को परिचित कराते हैं। जैसे मुख के द्वारा आहार से शरीर पुष्ट एवं समृद्धिशाली होता है वैसे ही कोश के द्वारा राज्य को पुष्टता एवं समृद्धिता प्राप्त होती है। जिस तरह मन की स्थिरता एवं विचारों को परिपक्वता से मानव की उन्नति होती है उसी तरह बल का स्थायित्व एवं परिपक्व रूप भी राज्य की उन्नति का कारण है। मानव शरीर की रक्षा जिस प्रकार हाथों से होती है उसी प्रकार राज्य की रक्षा दुर्गों के द्वारा की जाती है। मानव शरीर का संपूर्ण भार जिस प्रकार पैरों पर टिका रहता है ठीक उसी प्रकार राज्य एवं उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था का भार भी भूमि एवं जनता पर निर्भर करता है।

वैसे आचार्य शुक्र ने अपने नीतिग्रंथ में शरीर रागों की भाँति राज्यांगो की क्रिया प्रणाली का किसी एक स्थान पर क्रमबद्ध रूप में वर्णन तो प्रस्तुत नहीं किया लेकिन उर्पयुक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग उसकी कार्यप्रणाली को सुव्यवस्थित रूप से चलाये रखने के लिए कार्य करते हैं ठीक उसी प्रकार राज्य के विभिन्न अंग उसकी कार्यप्रणाली को सुचारू रूप से चलाने हेतु कार्य करतें हैं। यद्यपि आचार्य शुक्र के मानवांगों एवं राज्यांगों की कार्यप्रणाली पाश्चात्य विचारक स्पैंसर की भाँति विस्तृत एवं क्रमबद्ध तो नहीं है किन्तु यह स्पष्ट है कि महर्षि शुक्र के राज्य की प्रकृति का सावयव सिद्धान्त वैदिक साहित्य की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक विकसित एवं स्पष्ट है। इस भाँति स्पष्ट है कि पाश्चात्य विचारकों से बहुत समय पूर्व ही प्रचीन भारतीय राज्य शास्त्र प्रणेता राज्य की प्रकृति के सावयव सिद्धान्त का प्रतिपादन कर चुके थे।

प्राचीन भारत में राजतंत्रात्मक व्यवस्था का सूत्र निरंतर बना रहा है लेकिन इसके साथ ही साथ गणतंत्रात्मक व्यवस्था का वर्णन भी उपलब्ध होता है जिसका महत्व राजतंत्र की तुलना में अधिक न रहा। अतएवं सर्वमान्य रूप राजतंत्र का ही अस्तित्व रहा है क्योंकि समाज में लोकहित एवं अभ्युदय के लिए राजा की आवश्यकता

स्वीकार की जाती रही इसलिए महर्षि शुक्र ने राजा, राजपद, उत्तराधिकारी और अधिकार एवं कर्त्तव्य से सम्बन्धित विवेचना विस्तार से प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार राजा के अभाव में राज्य प्रजा, समुन्द्र में नाविक के बिना डूबती नौका की भाँति, नष्ट हो जाती है प्राचीन भारत की राजतंत्रात्मक व्यवस्था की श्रृंखला में शुक्रनीति भी एक कड़ी के रूप में विद्यमान रही है ।

संदर्भ ग्रंथ –

1 ए• एस• अल्तेकार – स्टेट एंड गवर्मेन्ट इन एशिएन्ट इंडिया – पृष्ठ–26

2 ए• एस• वाशन – अदभुत भारत – पृष्ठ–65

3 प्रेमकुमारी दीक्षित – महाभारत में राज्य व्यवस्था लखनउ, अर्चना प्रकाशन – 1970, पृष्ठ–11

4 ऋग्वेद – 1, 28, 2

5 अनंत सदाशिव अल्टेमर – प्राचीन भारत शासन पद्धति – 19

6 रामायण, अयोध्या कांड – 67, 31

7 महाभारत , शान्तिपर्व – 59–14

8 मनुस्मृति 7, 20

9 प्राचीन भारतीय विचारको ने राज्य एवं राजा की उत्पत्ति में अन्तर नहीं किया है।